श्री राम के द्वारा संत-असंत-लक्षण-विवेचन

जयप्रकाश शर्मा
साहित्याचार्य, पाण्डुलिपि विशेषज्ञ

देवर्षि के प्रति संत के लक्षण कहना - अरण्य में स्वयं भगवान् श्रीराम ने अपना सहज सुहृद एवं भक्तरक्षक स्वभाव बतलाकर उनका विवाह न करने देने का कारण बताया। नारद जी सुनकर मुग्ध हो गये। तदनंतर उनके पूछने पर भगवान् श्रीराम ने इस प्रकार संत के लक्षण बतलाये-

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ।
जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा।
अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमितबोध अनीह मित भोगी।
सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मदहीना।
धीर धर्म गति परम प्रबीना॥

दोहा- गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं।
पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती।
सरल सुभाउ सबहि सन प्रीति॥
जप तप व्रत दम संजम नेमा।
गुरु गोविन्द बिप्र पद प्रेमा॥

श्रद्धा छमा मयत्री दाया।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया।।
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना।
बोध जथारथ बेद पुराना।।
दम्भ मान मद करहिं न काऊ।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला।
हेतु रहित परहित रत सीला।।
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते।
कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।।

'हे मुनि ! सुनो; मैं संतो के गुणों को कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ। वे संत [काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद और मत्सर इन] छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिंचन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि,विद्वान्,योगी,सावधान, दूसरों को मान देने वाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्म के ज्ञान और आचरण में अत्यंत निपुण, गुणों के घर, संसार के दुःख से रहित और सन्देहों से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरणकमलों को छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही। कानों से अपने गुण सुनने में सकुचाते हैं, दूसरों के गुण सुनने से विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्याय का कभी त्याग नहीं करते। सरल-स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं। वे जप,तप,व्रत,दम,संयम और नियम में रत रहते हैं और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा,क्षमा,मैत्री,दया,मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणों में निष्कपट प्रेम होता है तथा वैराग्य,विवेक,विनय,विज्ञान (परमात्मा के तत्त्व का ज्ञान) और वेद-पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते। सदा मेरी लीलाओं को गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरों के हित में लगे रहने वाले होते हैं। हे मुनि ! सुनो, संतों के जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नही कह सकते।

'कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीन बन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे।।

सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।

ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए।।

'शेष और शारदा भी नहीं कह सकते।' यह सुनते ही नारद जी ने श्रीरामजी के चरणकमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तों के गुण कहे। भगवान् के चरणों में बार-बार सिर नवाकर नारद जी ब्रह्मलोक को चले गये। तुलसीदास जी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर केवल श्रीहरि के रंग में रँग गये हैं।

सनकादि के प्रति सत्संग-महिमा-कथन

श्री अयोध्यानाथ का दर्शन करने सनकादि मुनि पधारे। श्रीराम ने उनकी अभ्यर्थना की और कहा-

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा।

तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा।।

बढ़ें भाग पाइब सतसंगा।

बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा।।

दोहा- संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।

कहहिं संत कवि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ।।

'मुनीश्वरो ! सुनिये, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शन से ही [सारे] पाप नष्ट हो जाते हैं। बडे ही भाग्य से सत्संग की प्राप्ति होती है, जिससे बिना ही परिश्रम जन्म-मृत्यु का चक्र नष्ट हो जाता है।

'संत का संग मोक्ष (भव-बन्धन से छूटने) का और कामी का संग जन्म-मृत्यु के बन्धन में पड़ने का मार्ग है। संत, कवि और पण्डित तथा वेद पुराण (आदि) सभी सद्ग्रंथ इस प्रकार कहते हैं।'

भरत के प्रति संत-असंत का भेद-कथन

एक बार भगवान् श्रीराम ने अपने भाइयों सहित परम प्रिय हनुमान् जी को साथ लेकर सुन्दर उपवन में गये थे। वहाँ सनकादि आये। श्रीराम ने उनका बड़ा आदर किया, स्तवन किया। तदनंतर सनकादि ने उनकी स्तुति की। उनके चले जाने के बाद भरत जी ने कुछ पूछना चाहा, पर वे संकोचवश स्वयं कुछ न कह सके। हनुमान् ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक उनकी ओर से निवेदन किया- 'प्रभो ! भरत जी कुछ पूछना चाहते हैं, पर पूछने में सकुचा रहे हैं।' भगवान् बोले-

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ।
भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ॥

'हनुमान् ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। भरत के और मेरे बीच में कभी भी कोई अंतर है ?' यह सुनकर भरत जी ने चरण पकड़ लिये और बड़ी ही विनम्रभाषा में संत और असंत के लक्षण तथा भेद सुनने की इच्छा प्रकट की। उन्होनें कहा -

संतन्ह कै महिमा रघुराई।
बहु बिधि वेद पुरानन्ह गाई॥
श्रीमुख तुम्ह पुनि कीन्हि बढ़ाई।
तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई॥
सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन।
कृपासिन्धु गुन ग्यान विचच्छन॥
संत असंत भेद बिलगाई।
प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥

'हे रघुनाथ जी ! वेद-पुराणों ने संतों की महिमा बहुत प्रकार से गायी है। आपने भी अपने श्रीमुख से उनकी बड़ाई की है और उन पर प्रभु (आप) का प्रेम भी बहुत है। हे प्रभो ! मैं उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र हैं और गुण तथा ज्ञान में अत्यन्त निपुण हैं। हे शरणागत का पालन करने वाले ! संत और असंतों के भेद अलग-अलग करके मुझको समझाकर कहिये।'

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता।
अगनित श्रुति पुरान बिख्याता॥
संत असंतन्हि कै असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥

दोहा- ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग वल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दण्ड॥

बिषय अलंपट सील गुनाकर।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।।
सम अभूतरिपु विमद बिरागी।
लोभामरष हरष भय त्यागी।।
कोमलचित दीनन्ह पर दाया।
मन बच क्रम मम भगति अमाया।।
सबहि मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।
बिगत काम मम नाम परायन।
सांति बिरति बिनती मुदितायन।।
सीतलता सरलता मयत्री।
द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।।
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर।
जानेहु तात संत संतत फुर।।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं।
परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं।।

दोहा- निन्दा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय गुन मन्दिर सुख पुंज।।

[श्रीराम जी ने कहा-] 'भाई ! संतों के लक्षण (गुण) असंख्य हैं, जो वेद और पुराणों में प्रसिद्ध हैं। संत और असंतों की करनी ऐसी है, जैसे कुल्हाडी और चन्दन का आचरण है। भाई ! सुनो, कुल्हाड़ी चन्दन को काटती है। [क्योंकि उसका स्वभाव या काम ही वृक्षों को काटना है।] किंतु चन्दन [अपने स्वभाववश] अपना गुण देकर उसे [काटने वाली कुल्हाड़ी को] सुगन्ध से सुवासित कर देता है। 'इसी गुण के कारण चन्दन देवताओं के सिर पर चढ़ता है और जगत् का प्रिय होता है तथा कुल्हाड़ी के मुख को यह दण्ड मिलता है कि उसको आग में जलाकर फिर से घन से पीटते हैं।

'संत विषयों में लंपट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणों की खान होते हैं। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे [सब में, सर्वत्र, सब समय] समता रखते हैं। उनके मन में कोई उनका शत्रु नहीं होता, वे मद

से रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भय का त्याग किये हुए रहते हैं। उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनों पर दया करते हैं तथा मन,वचन, और कर्म से मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं पर स्वयं मानरहित होते हैं। भरत ! वे प्राणी मेरे प्राणों के समान हैं। उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नाम के परायण होते हैं। शांति, वैराग्य,विनय और प्रसन्नता के घर होते हैं। उनमें शीतलता सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मणों के चरणों में प्रीति होती है,जो धर्मों को उत्पन्न करने वाली है। तात ! ये सब लक्षण जिसके हृदय में बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना। जो शम (मन के निग्रह), दम (इन्द्रियों के निग्रह), नियम और नीति से कभी विचलित नहीं होते और मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते, जिन्हें निन्दा और स्तुति (बड़ाई) दोनों समान हैं और मेरे चरण कमलों में जिनकी ममता है, वे गुणों के धाम और सुख की राशि संतजन मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ।
भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ।।
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।
जिमि कपिलहि घालइ हरहाई।।
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी।
जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई।
हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।
काम क्रोध मद लोभ परायन।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन।।
बयरु अकारन सब काहू सों।
जो कर हित अनहित ताहू सों।।
झूठइ लेना झूठइ देना।
झूठइ भोजन झूठ चबेना।।
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा।
खाइ महा अहि हृदय कठोरा।।

दोहा- पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपवाद।

ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

'अब असंतों (दुष्टों) का स्वभाव सुनो; कभी भूलकर भी उनकी संगति नहीं करनी चाहिये। उनका संग सदा दु:ख देनेवाला होता है। जैसे हरहाई (बुरी जाति की) गाय कपिला (सीधी और दुधार) गाय को अपने संग से नष्ट कर डालती है। दुष्टों के हृदय में बहुत अधिक संताप रहता है। वे परायी सम्पत्ति (सुख) देखकर सदा जलते रहते हैं। वे जहाँ कहीं दूसरे की निन्दा सुन पाते हैं, वहाँ ऐसे हर्षित होते हैं मानो रास्ते में पडी निधि (खजाना) पाली हो। वे काम, क्रोध, मद, लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं। वे बिना ही कारण सब किसी से बैर किया करते हैं। जो भलाई करता है, उसके साथ भी बुराई करते हैं। उनका झूठा ही लेना और झूठा ही देना होता है। झूठा ही भोजन होता है और झूठा ही चबेना होता है (अर्थात् वे लेन-देन के व्यवहार में झूठ का आश्रय लेकर दूसरों का हक मार लेते हैं अथवा झूठी डींग हाँका करते हैं कि हमने लाखों रुपये ले लिये, करोड़ों का दान कर दिया। इसी प्रकार खाते हैं चने की रोटी और कहते हैं कि आज खूब माल खाकर आये। अथवा चबेना चबाकर रह जाते हैं और कहते हैं हमें बढ़िया भोजन से वैराग्य है, इत्यादि। मतलब यह कि वे सभी बातों में झूठ ही बोला करते हैं।) जैसे मोर [बहुत मीठा बोलता है, परंतु उस] का हृदय इतना कठोर होता है कि वह महान् विषैले साँपों को भी खा जाता है। वैसे ही वे भी ऊपर से मीठे वचन बोलते हैं [परंतु हृदय के बड़े ही निर्दयी होते हैं।]

'वे दूसरों से द्रोह करते हैं और परायी स्त्री, पराये धन तथा परायी निन्दा में आसक्त रहते हैं। वे पामर तथा पापमय मनुष्य नर-शरीर धारण किये हुए राक्षस ही हैं।

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन।
सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती।
सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी।
लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मात पिता गुर बिप्र न मानहिं।

आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥

करहिं मोह बस द्रोह परावा।

संत संग हरि कथा न भावा॥

अवगुन सिन्धु मन्दमति कामी।

वेद बिदूषक परधन स्वामी॥

बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा।

दम्भ कपट जियँ धरें सुबेषा॥

दोहा- ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं।

द्वापर कछुक बृंद बहु होइहहिं कलिजुग माहिं॥

'लोभ ही उनका ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है, (अर्थात् लोभ से ही वे सदा घिरे हुए रहते हैं।) वे पशुओं के समान आहार और मैथुन के ही परायण होते हैं, उन्हें यमपुर का भय नहीं लगता। यदि किसी की बड़ाई सुन पाते हैं तो वे ऐसी [दु:खभरी] सांस लेते हैं मानो उन्हें जूडी आ गयी हो। और जब किसी की विपत्ति देखते हैं तब ऐसे सुखी होते हैं मानो जगत् भर के राजा हो गये हों। वे स्वार्थपरायण, परिवार वालों के विरोधी, काम और लोभ के कारण लम्पट और अत्यन्त क्रोधी होते हैं। वे माता, पिता, गुरु और ब्राह्मण- किसी को नहीं मानते। आप तो नष्ट हुए ही रहते हैं, [साथ ही अपने संग से] दूसरों को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरों से द्रोह करते हैं। उन्हें न संतों का संग अच्छा लगता है न भगवान् की कथा ही सुहाती है। वे अवगुणों के समुद्र,मन्दबुद्धि,कामी (रागयुक्त), वेदों के निन्दक और जबरदस्ती पराये धन के स्वामी (लूटने वाले) होते हैं। वे दूसरों से द्रोह तो करते ही हैं, परंतु ब्राह्मण द्रोह विशेषता से करते हैं। उनके हृदय में दम्भ और कपट भरा रहता है। परंतु वे [ऊपर से] सुन्दर वेष धारण किये रहते हैं।

'ऐसे नीचे और दुष्ट मनुष्य सत्ययुग और त्रेता में नहीं होते, द्वापर में थोड़े से होंगे और कलियुग में तो इनके झुण्ड के झुण्ड होंगे।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

निर्नय सकल पुरान बेद कर।

कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

नर सरीर धरि जे पर पीरा।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।
करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना।।
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता।।
अस बिचारि जे परम सयाने।
भजहिं मोहि संसृत दुख जाने।।
त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक।
भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक।।
संत असंतन्ह के गुन भाषे।
ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे।।

दोहा- सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।

'भाई ! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दु:ख पहुँचाने के समान कोई नीचता (पाप) नहीं है। तात ! समस्त पुराणों और वेदों का यह निर्णय (निश्चित सिद्धांत) मैनें तुमसे कहा है, इस बात को पण्डित लोग जानते हैं। मनुष्य का शरीर धारण करके जो लोग दूसरों को दु:ख पहुँचाते हैं, उनको जन्म-मृत्यु के महान् संकट सहने पड़ते हैं। मनुष्य मोहवश स्वार्थपरायण होकर अनेकों पाप करते हैं, इसी से उनका परलोक नष्ट हुआ रहता है। हे भाई ! मैं उनके लिये कालरूप (भयंकर) हूँ और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का [यथायोग्य] फल देने वाला हूँ। यों विचार कर जो लोग परम चतुर हैं, वे संसार (के प्रवाह) को दु:खस्वरूप जानकर मुझे ही भजते हैं। [इस प्रकार] मैंने संतों और असंतों के गुण कहे। जिन लोगों ने इन गुणों को समझ रखा है वे जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ते।'तात ! सुनो, माया से रचे हुए ही अनेक (सब) गुण और दोष हैं (इनकी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है); गुण (विवेक) इसी में है कि दोनों ही न देखे जायँ, इन्हें देखना- यही अविवेक है।'